Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

Original Article

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन और सामाजिक समानता का विचार

रत्नेश कुमार
शोधार्थी,यू.जी.सी. नेट/जे.आर.एफ. विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची
Email: ratneshgupta32@gmail.com

Manuscript ID:
JRD -2026-180119
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 1(A)
Pp. 92-95
January - 2026
Submitted: 16 Dec. 2025
Revised: 26 Dec. 2025
Accepted: 11 Jan. 2026
Published: 31 Jan. 2026

सारांश

मध्यकाल में भक्ति आंदोलन एक ऐसा धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलन था, जिसने मोक्ष की प्राप्ति के लिए पूर्व से स्थापित जटिल कर्मकांडों, अनुष्ठानों एवं पुरोहितों की मध्यस्थता को दरकिनार करते हुए, ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत प्रेम और भक्ति को मुख्य मार्ग बनाया। भक्ति शब्द का मूल अर्थ है "ईश्वर के प्रति समर्पण या गहन प्रेम"। मध्यकालीन हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियां अर्थात जाति प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा, और स्त्रियों की निम्न स्थिति के अतिरिक्त हिन्दू–मुस्लिम के बीच आपसी वैमनस्य की भावना को भक्ति आंदोलन के माध्यम से समाप्त करने का प्रयास किया गया। सगुण और निर्गुण भक्ति धारा के संतों ने अपने–अपने स्तर से सामाजिक समानता के विचारों को समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाने का भरसक प्रयास किया। संत कबीर, रैदास और दादू दयाल आदि संतों ने जात–पात की भावना से ऊपर उठकर सभी मनुष्यों को ईश्वर की संतान कहा। इस आंदोलन ने समानता, भाइचारे और मानवता के विचारों को भारतीय संस्कृति के मूलधारा में स्थापित किया और एक ऐसे वातावरण का निर्माण किया, जिसने आने वाले समय में सामाजिक सुधार आंदोलनों और स्वतंत्रता संग्राम को वैचारिक आधार प्रदान किया।

कुंजी शब्द : *एकेश्वरवाद, कुरीतियां, जाति प्रथा, भक्ति।*

भूमिका

भारत का सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहास अत्यंत प्राचीन तथा विविधतापूर्ण है। यहाँ अनेक धार्मिक परंपराएँ, दर्शन, विचारधाराएँ और सामाजिक संरचनाएँ एक साथ विकसित होती रही हैं। भारतीय समाज में वेद, उपनिषद, पुराण और स्मृति ग्रंथों के आधार पर स्थापित वर्ण व्यवस्था ने एक लंबे समय तक सामाजिक ढांचे को नियंत्रित किया। किंतु इस व्यवस्था में समानता और न्याय के स्थान पर असमानता, भेदभाव और ऊँच–नीच की प्रवृत्ति का विस्तार अधिक दिखाई देता है। विशेष रूप से मध्यकालीन भारत में जातिगत भेदभाव, छुआछूत, स्त्रियों की हीन स्थिति तथा सामंती शोषण जैसी समस्याओं ने समाज को गहरे संकट में डाल दिया था। भक्ति आंदोलन ने मनुष्य और ईश्वर के बीच मध्यस्थता करने वाले पुरोहित वर्ग को चुनौती दी और यह प्रतिपादित किया कि ईश्वर तक पहुँचने के लिए किसी विशेष जाति, वर्ग, लिंग या सामाजिक पद की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर सबका है और सबको उसके सान्निध्य का अधिकार है। यह विचार उस समय के भारतीय समाज के लिए अत्यंत नवीन और क्रांतिकारी था। यूसुफ हुसैन के अनुसार भक्ति आंदोलन रूढ़िवादी, सामाजिक तथा धार्मिक विचारों के विरुद्ध हृदय की प्रतिक्रिया तथा भावों का उद्गार है।[1]

भक्ति आंदोलन के उदय से संबंधित कई मत सामने आते हैं। बेवर और ग्रियर्सन के अनुसार भक्ति एवं ईश्वर की एकता का विचार हिंदुओं ने ईसाइयों से प्राप्त किया था। दूसरे मत के अनुसार भक्ति आंदोलन का उदय इस्लाम के प्रभाव के कारण हुआ। परंतु तथ्य की कसौटी पर यह मत साबित नहीं होते। बार्थ का मानना है की भक्ति आंदोलन हिंदू धर्म का ही एक अंग था।[2] भक्ति का अर्थ अपने अराध्य देव तथा गुरु के प्रति संपूर्ण समर्पण करना होता है। ब्राह्मणवाद के अंतर्गत अत्यधिक यज्ञ, पशु बलि और मंत्रों पर बल दिया जाता था, इससे लोग थक चुके थे। अब केवल कर्म नहीं अपितु भक्ति एवं ज्ञान मार्ग को भी मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया।[3]

भक्ति आंदोलन के दो प्रमुख उद्देश्य थे पहला हिंदू धर्म के अंदर व्याप्त कुरीतियों को समाप्त करके सुधार कार्य करना तथा दूसरा हिंदू मुस्लिम के बीच आपसी सौहार्द स्थापित करना।[4] भक्ति आंदोलन के विकास के साथ दो प्रमुख धाराएँ उभरकर आईं। सगुण भक्ति धारा, इसमें ईश्वर को साकार रूप में पूजा गया। रामानंद, सूरदास, तुलसीदास, मीरा बाई आदि कवि–संत इस धारा से जुड़े।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
रत्नेश कुमार, शोधार्थी, यू.जी.सी. नेट/जे.आर.एफ. विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची

How to cite this article:
कुमार, . रत्नेश . (2026). मध्यकालीन भक्ति आंदोलन और सामाजिक समानता का विचार. Journal of Research & Development, 18(1(A)), 92–95. https://doi.org/10.5281/zenodo.18617380

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI: 10.5281/zenodo.18617380
OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

उन्होंने राम, कृष्ण, विष्णु और शिव जैसे देवताओं को अपना आराध्य माना। निर्गुण भक्ति धारा, इसमें ईश्वर को निराकार और निर्गुण माना गया। कबीर, गुरु नानक, दादू, रैदास, नामदेव आदि संत इस धारा से जुड़े। उन्होंने जातिव्यवस्था, मूर्तिपूजा और कर्मकांड का विरोध किया।

इस प्रकार भक्ति आंदोलन केवल धार्मिक अनुभवों तक सीमित न रहकर, सामाजिक परिवर्तन और समानता की चेतना का भी वाहक बना। यही कारण है कि इस लघु शोध लेख में विशेष रूप से भक्ति आंदोलन के अंतर्गत सामाजिक समानता के विचार, उसकी उपलब्धियों, और आधुनिक प्रासंगिकता का विश्लेषण करने का प्रयास किया जाएगा।

सामाजिक समानता का विचार

भक्ति आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह था कि इसने भारतीय समाज में व्याप्त असमानताओं, विशेषकर जातिवाद, छुआछूत, स्त्री–दासता और वर्ग विभाजन को चुनौती दी। संतों और कवियों ने प्रेम, भक्ति और मानवता के आधार पर सामाजिक समानता का विचार प्रस्तुत किया।

1. जातिव्यवस्था और भक्ति आंदोलन

मध्यकालीन समाज जाति–व्यवस्था से जकड़ा हुआ था। जन्म से ब्राह्मण सर्वोच्च और शूद्र सबसे नीच माने जाते थे। समाज का बड़ा हिस्सा विशेषकर दलित और अछूत धार्मिक कर्मकांडों में भाग लेने से वंचित थे। भक्ति संतों ने इस व्यवस्था का खुलकर विरोध किया। रामानंद हिंदू समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था को समाप्त करने के लिए उन्होंने विष्णु के स्थान पर राम सीता की आराधना करना शुरू किया क्योंकि राम सभी जातियों में प्रिय थे। उन्होंने जाति भावना का परित्याग करके 'मानहु एक भगत कै नाता' का दृष्टिकोण अपनाया।[5] कबीर ने कहा कि मनुष्य की पहचान उसके कर्म से है, न कि उसके जन्म से। उन्होंने लिखा –

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।"[6]

रैदास स्वयं जूते बनाने वाले परिवार से थे। उन्होंने कहा कि ईश्वर सबके लिए समान है –

जात–जात में जाति हैं, ज्यों केलन के पात।
रविदास मानुष न जुड़ सकै, जौ लौ जाति न जात ।।[7]

गुरु नानक ने जातिव्यवस्था को कठोर आलोचना का विषय बनाया। उन्होंने कहा कि ईश्वर की नजर में सभी एक समान हैं। उनका "संगत और पंगत" का सिद्धांत इसका प्रत्यक्ष प्रमाण था।[8] चैतन्य ने भी ब्राह्मणों के अत्याचार से दलितों की रक्षा करते हुए जाति प्रथा की आलोचना की।[9] वल्लभाचार्य ने तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं के आधार पर संपूर्ण भारत की विस्तृत यात्रा की तथा सभी वर्गों के लोगों से मिलकर उनके अनुभवों को जाना और समझा और तत्पश्चात जाति प्रथा का विरोध किया।[10] उनकी दृष्टि में शुद्रों की स्थिति निम्न नहीं थी अपितु अन्य वर्गों की सेवा करके वे ईश्वर की सेवा करते थे।[11]

2. स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण

मध्यकाल में स्त्रियाँ पितृसत्ता के बंधनों में जकड़ी हुई थीं। शिक्षा से वंचित, पर्दा प्रथा और सती जैसी कुरीतियों से पीड़ित स्त्रियाँ सामाजिक समानता से दूर थीं। भक्ति आंदोलन ने स्त्रियों को भी ईश्वर–भक्ति और सामाजिक जीवन में सक्रिय भागीदारी का अवसर दिया। मीरा बाई ने अपने व्यक्तिगत जीवन में सामाजिक बंधनों को तोड़ा। ऐसा कहा जाता है कि विवाह के समय उन्होंने कृष्ण की प्रतिमा को हाथ में लेकर सात वचनों को पूरा किया। उन्होंने अपने ससुराल वालों को साफ शब्दों में कहा कि –

जाकर सिर मोर मुकुट मेरो पति सोए।
मेरा तो गिरधर गोपाल दूसरा ना कोई ।।

उन्होंने पति की मृत्यु के बाद सती होने से इंकार करके परिवार और तत्कालीन रूढ़िवादी वाली समाज से विद्रोह कर दिया।[12] वे विधवा होकर भी कृष्ण भक्ति में डूबी रहीं और समाज के ताने–बाने की परवाह न की।[13] उनकी कविताएँ इस बात की गवाही हैं कि भक्ति ने स्त्रियों को भी आत्म–अभिव्यक्ति का मंच दिया। ताज मध्यकाल की एक ऐसी मुस्लिम कवियित्री थी जिन्होंने धर्म और समाज से विरुद्ध जाकर कृष्ण प्रेम में 'हिन्दूआनी' की तरह रहने की घोषणा करती है।[14] रामानंद ने स्त्रियों को धार्मिक विचार विमर्श में भाग लेने देकर सामाजिक स्थिति सुधारने का प्रयास किया।[15] कबीर ने नारी वर्ग के नैतिकता में गिरावट, पर्दा प्रथा और बाल विवाह को अपना सहानुभूति का विषय बना लिया था।[16] नानक ने स्त्रियों की स्थिति से संतुष्ट नहीं थे। उनका कहना था कि स्त्री के गर्भ से ही जीवन का संचार होता है और यही स्त्री हमे सामाजिक उत्तरदायित्व सिखाती है तो हम इन्हें अपने से कम क्यों आंकते है।[17] वल्लभाचार्य ने मुगल काल में स्त्रियों की गिरी हुई दशा को सुधारने का प्रयास किया। वे इनकी स्थिति वैदिक कालीन समाज की स्त्रियों की भांति करना चाहते थे।[18] वल्लभाचार्य की दृष्टि में पुरुष और स्त्री के बीच कोई भेद नहीं है, वे चाहते थे कि गुणवान स्त्रियां पुरुषों में भक्ति भावना का विकास करें। वे उन वेश्याओं से भी सहानुभूति रखने पसंद करते थे जो भक्ति भावना को अपनाना चाहती थी।[19] देखा जाए तो वल्लभाचार्य का दृष्टिकोण महिलाओं के प्रति बहुत खुले विचारों वाला था।

इस प्रकार भक्ति आंदोलन ने स्त्रियों को धार्मिक और सामाजिक चेतना का नया आधार दिया।

3. साम्प्रदायिक सौहार्द और समानता

भक्ति आंदोलन ने न केवल जातिगत असमानताओं को तोड़ा, बल्कि हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच भी पुल का कार्य किया। रामानुज एकेश्वरवाद के आधार पर हिन्दू और मुसलामानों को एक साथ लाने के पक्षधर थे।[20] कबीर ने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों की कुरीतियों की आलोचना की।[21] उन्होंने कहा कि ईश्वर न तो मंदिर में है, न मस्जिद में वह तो हर प्राणी में है। कबीर चाहते थे कि हिन्दू मुस्लिम व्यर्थ की धार्मिक आडम्बरों को त्याग कर वास्तविक ईश्वर को पहचाने।[22] ताराचंद के अनुसार कबीर का उद्धेश्य प्रेम के माध्यम से हिन्दू और मुसलामानों को एक साथ लाना था।[23] कबीर ने साम्प्रदायिकता का मूल

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

कारण हिन्दुओं के मंदिर और मुसलामानों के मस्जिद में देखा। उन्होंने इसके स्थान पर ईश्वर भजन की एक विधि बताई तथा मंदिर और मस्जिद की खुलेआम निंदा अपने कविताओं के माध्यम से किया।

पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहाड़ ।
याते तो चक्की भली, पीस खाय संसार ।।[24]

सूफी संतों ने भी इसी विचार को बल दिया। ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया और बुल्ले शाह जैसे सूफी संतों ने "इश्क–ए–हकीकी" को सबके लिए समान बताया। हिंदी और दूसरी भाषाओं में वैष्णव संतों के लिखे भक्ति गीतों ने सूफियों के दिलों को फारसी शायरी से भी अधिक प्रभावित किया। यशस्वी सूफी अब्दुल वाहिद बिलग्रामी ने 'हकायक–ए–हिंदी' नाम से एक प्रबंधग्रंथ लिखा जिसमें उन्होंने कृष्ण, मुरली, गोपी, राधा, यमुना आदि शब्दों को सूफी रहस्यवादी ढंग से समझाने का प्रयास किया।[25] नानक सिख धर्म के स्थापना से पूर्व हिन्दू मुस्लिम के बीच के खाई को पाटना चाहते थे ताकि दोनों के बीच शांति, सद्भावना और आदान–प्रदान का वातावरण बन सके।[26] चैतन्य बंगाल के हिंदूओं और मुसलमानों के बीच आपसी सौहार्द पूर्ण वातावरण बनाने के लिए हिंदू और मुसलमान दोनों को ही अपना शिष्य बनाया।[27] वल्लभाचार्य धर्म और संस्कृति के आधार पर हिंदू एवं मुसलमान के बीच एकता स्थापित करना चाहते थे। उनके द्वार शूद्र, अछूत और मुसलमान के लिए हमेशा खुले रहते थे।[28] उन्होंने उन सभी मुसलमान को अपना शिष्य बनाया जो उनकी भक्ति साधना को स्वीकार करने के लिए तैयार थे। उन्होंने हिंदू और मुसलमान के बीच विवाह और भोजन करने की स्वीकृति तो नहीं दी, परंतु वह हिंदू और मुसलमान के बीच होने वाले प्रेम विवाह के विरुद्ध नहीं थे।[29] संत दादू ने भी हिन्दू मुस्लिम समुदायों के भेद मिटाने के प्रयास किए।[30] संत मलूकदास ने भी राम, रहीम, अल्ला में कोई अंतर नहीं किया। वे हिंदू मुस्लिम समन्वय के समर्थक थे।[31]

इस तरह भक्ति और सूफी आंदोलन ने मिलकर भारत की गंगा–जमुनी तहजीब को जन्म दिया, जहाँ सामाजिक समानता और भाईचारा सर्वोपरि थे।

निष्कर्ष

भक्ति आंदोलन भारतीय इतिहास की एक ऐसी धारा है जिसने न केवल धार्मिक चेतना को बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं को भी गहराई से प्रभावित किया। यह आंदोलन उस समय की उपज था जब समाज जातिवाद, ऊँच–नीच, छुआछूत और वर्गीय असमानताओं से ग्रस्त था। भक्ति संतों ने अपने काव्य, उपदेश और जीवन व्यवहार से यह सिद्ध किया कि ईश्वर केवल मंदिरों या ग्रंथों में नहीं, बल्कि प्रत्येक जीव में विद्यमान है।

भक्ति आंदोलन का सबसे बड़ा योगदान सामाजिक समानता के विचार को स्थापित करना था। संत कबीर, रैदास, दादू दयाल जैसे संतों ने जाति–पांति की दीवारें तोड़कर सभी को ईश्वर की संतान बताया। सामाजिक दृष्टि से यह आंदोलन व्यापक महत्व रखता है। इसने उस समय के शोषित और वंचित वर्गों को आत्मसम्मान दिया। भक्ति की धारा ने समाज में भाईचारा, करुणा और सहअस्तित्व का वातावरण पैदा किया। यह आंदोलन स्त्रियों के लिए भी एक नया अवसर लेकर आया। मीरा और ताज जैसी संत कवयित्रियों ने सामाजिक बंधनों को चुनौती दी और भक्ति के माध्यम से अपनी पहचान बनाई। हालाँकि, इसकी सीमाएँ भी रहीं। जाति प्रथा पूरी तरह समाप्त नहीं हुई, स्त्रियों को वास्तविक समान अधिकार नहीं मिल पाए और यह आंदोलन राजनीतिक या आर्थिक स्तर पर संरचनात्मक बदलाव नहीं ला सका। इसके बावजूद इस आंदोलन की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक धारा ने भारतीय समाज को गहराई से प्रभावित किया और आगे चलकर आधुनिक सुधार आंदोलनों तथा स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरणा दी।

इस प्रकार, भक्ति आंदोलन को हम एक आध्यात्मिक–सामाजिक आंदोलन कह सकते हैं, जिसने समानता, भाईचारे और मानवता के विचारों को भारतीय संस्कृति की मूलधारा में स्थापित किया। यह भारतीय समाज के उस ऐतिहासिक मोड़ का प्रतीक है जहाँ धर्म और सामाजिक चेतना का संगम हुआ और जिसने भविष्य की सामाजिक–धार्मिक क्रांतियों की नींव रखी। भक्ति आंदोलन ने न केवल धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन किया, बल्कि सामाजिक समानता की चेतना भी जागृत की। यह आंदोलन केवल भक्तिभाव तक सीमित नहीं था, बल्कि समाज के उपेक्षित वर्गों को आत्मसम्मान और अधिकार का बोध कराने वाला भी था। आज के आधुनिक भारत में जब हम सामाजिक न्याय, लोकतंत्र और मानवाधिकारों की बात करते हैं, तो उसके ऐतिहासिक स्रोतों में भक्ति आंदोलन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसने एक ऐसा वातावरण तैयार किया, जिसमें आने वाले समय में सामाजिक सुधार आंदोलनों और स्वतंत्रता संग्राम को वैचारिक आधार प्राप्त हुआ।

सन्दर्भ सूची

1. झारखंडे चौबे, मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1979, पृष्ठ – 327
2. के. एल. खुराना, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1985, पृष्ठ – 66
3. प्रशांत गौरव, पूर्व मध्ययुगीन भारत, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ – 171
4. आर. के. गुप्त, मध्यकालीन समाज, धर्म, कला और वास्तुकला, पोइन्टर कंप्युटर्स, जयपुर, 2007, पृष्ठ – 225
5. झारखंडे चौबे, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 338
6. कबीर दोहावली, सं0 – नीलोत्पल, अध्याय–4, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ – 15
7. संत रविदास रत्नावली, सं0 – ममता झा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ – 66
8. झारखंडे चौबे, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 365
9. वही, पृष्ठ – 378,379
10. वही, पृष्ठ – 384,385
11. जे. सी. शाह, श्रीमद् वल्लभाचार्य – हिज फिलासफी एंड रेलीजन, दा पुस्तकमार्गया पुस्तकालय, गुजरात, 1969, पृष्ठ – 270

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-1(A)| January - 2026

12. डी. एन. शरन, भारतीय इतिहास में नारी, एलिगेंट प्रिंटोंग्राफिक्स, दिल्ली, 2007, पृष्ठ – 103
13. के. एल. खुराना, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 77
14. डी. एन. शरन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 104
15. आर. के. गुप्त, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 230
16. झारखंडे चौबे, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 349
17. वही, पृष्ठ – 367,368
18. वही, पृष्ठ – 386
19. जे. सी. शाह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 274
20. हरिश्चंद्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग–1, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2009, पृष्ठ – 438
21. वही, पृष्ठ – 439
22. आर. के. गुप्त, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 233
23. वही, पृष्ठ – 231,232
24. झारखंडे चौबे, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 350
25. सतीश चंद्र, मध्यकालीन भारत राजनीति, समाज और संस्कृति, ओरिएंट ब्लैकस्वॉन प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ – 189
26. वही, पृष्ठ – 187
27. झारखंडे चौबे, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 379
28. जे. सी. शाह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 270
29. वही, पृष्ठ – 272
30. के. एल. खुराना, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 81
31. झारखंडे चौबे, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ – 404